स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १६ | गौराब्द ४८५, मास—त्रिविक्रम ५, वार—क्षीरोदशायी
शनिवार, ३१ वैशाख, सम्वत् २०२८, १५ मई १९७१ | संख्या १२

मई १९७१

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

कालिय नागस्य श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।१६।५६—५९)

वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः ।
स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥५६॥

हे नाथ ! हम सर्प जातिके हैं; अतः जन्मसे ही खल स्वभावयुक्त, तामसिक प्रकृतिपूर्ण एवं क्रोधशील हैं । सभी प्राणियोंका स्वभाव दुष्ट ग्रहके समान है, अतएव वह अत्यन्त दुष्परिहार्य है ॥५६॥

त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातुर्गणविसर्जनम् ।
नानास्वभाववीर्याजोयोनिबीजाशयाकृति ॥५७॥

हे विधाता ! आप ही ने विभिन्न स्वभाव, वीर्य, ओज, योनि, बीज, आशय एवं आकृति-युक्त इस गुणजात विश्वकी सृष्टि की है ॥७॥

वयं च तत्र भगवन् सर्पा जात्युरुमन्यवः ।

कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥५८॥

हे भगवन् ! हे सर्वमय ! इस विचित्र जगतमें हम सर्प जाति जन्मसे ही अत्यन्त क्रोध स्वभावयुक्त हैं, अतएव मुग्धचित्त हम किस प्रकार आपकी दुस्त्यज्य मायाको त्याग कर सकेंगे ? ॥५८॥

भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ।

अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥५९॥

माया-परित्याग विषयमें आप ही एकमात्र कारण हैं अर्थात् आपकी कृपाके बिना कोई भी मायाका परित्याग करनेमें सर्वथा असमर्थ है। अतएव हमारे प्रति अनुग्रह या निग्रह, जैसा उचित हो, सो करें ॥५९॥

॥ इति कालियनागस्य श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥

॥ इति कालियनागका श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त ॥

भ्रम-संशोधन

पत्रिका के पाठकोंसे निवेदन है कि वे गताङ्कमें (संख्या ११ में) निम्नलिखित त्रुटियोंका संशोधन कर पाठ करें: –

पृष्ठ सं०	कालम	लाइन सं०	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
२३६	–	१०	आन्तात्मन्	शान्तात्मन्
२३७	१	२९	यक्ति	व्यक्ति
२३८	१	१६	बजाय	बजायें
२४४	२	२०	आश्वयकता	आवश्यकता
२४६	१	४	मुकुन्दश्रेष्ठ	मुकुन्दप्रेष्ठ
२४९	१	१८	मंज्ञा	धर्मज्ञाः

वैष्णवोंकी अलौकिकता

वैष्णव लोग कर्मकाण्डीय पाप-पुण्य विचारके अधीन नहीं हैं। वैष्णव लोग कदापि जाति, कुल, समाज आदिकी सीमाओंमें आबद्ध नहीं हैं। भगवदिच्छासे वैष्णव लोग जिस किसी कुलमें, जिस किसी जातिमें आविर्भूत होकर उस-उस कुल और देशको पवित्र कर सकते हैं। पूर्व दिशा जिस प्रकार सूर्यके उदयका कारण या सूर्यका जनक नहीं है, उसी प्रकार कोई भी जाति, कुल या देश वैष्णवोंके आविर्भावका कारण या जनकस्वरूप नहीं है। वैष्णवोंके जनक-जननी नहीं हैं, जन्म-मृत्यु नहीं है, कर्म-काण्डीय जाति-कुल नहीं है। बहिःप्रज्ञा द्वारा चालित प्रापञ्चिक व्यक्ति अक्षज ज्ञानद्वारा जो कुछ दर्शन करते हैं, उसे कर्मकाण्डीय व्यक्तियोंके ऊपर प्रयुक्त करनेपर भी वैष्णवोंके ऊपर प्रयुक्त किया नहीं जा सकता। इसलिए श्रीकृष्णलीलाके व्यास एवं श्री चैतन्य-लीलाके व्यासने समस्वरसे बतलाया है—

१. **न कर्मबन्धनं जन्म वैष्णवानांच विद्यते।'**

(पद्मोत्तर खण्ड)

अर्थात् वैष्णवों का कर्मबन्धन या जन्म आदि नहीं हैं।

२. **'वैष्णवे जाति-बुद्धिर्यस्य नारकी सः।'**

(पद्म-पुराण)

अर्थात् वैष्णवोंके प्रति जिसकी जाति-बुद्धि है, वह नारकी है।

३. **"अतएव वैष्णवेर जन्म-मृत्यु नाइ।**
संगे आइसेन, संगे जायेन तथाइ॥
धर्म, कर्म, जन्म वैष्णवेर कभु नहे॥'

(चैतन्यभागवत अ० ८।१७३,१७४)

४. **"जे पापिष्ट वैष्णवेर जाति-बुद्धि करे।**
जन्म जन्म अधम योनिते डूबि मरे॥
जे ते कुले वैष्णवेर जन्म केने नहे।
तथापिह सर्वोत्तम सर्व शास्त्रे कहे॥"

(चैतन्य भागवत अ० १०।१००,१०२)

५. **शोच्य देशे शोच्य कुले आपन समान।**
जन्माइया 'वैष्णव' सबारे करेन त्राण॥
जेइ देशे जेइ कुले वैष्णव अवतरे।
ताँहार प्रभावे लक्ष योजन निस्तरे॥
जे स्थाने वैष्णवगण करेन विजय।
सेइ स्थान हय अति पुण्यतीर्थमय॥

(चैतन्य भागवत आ० २।४९—५१)

जाति कुल—सब निरर्थक बुझाइते।
जन्माइलेन नीच कुले प्रभुर आज्ञाते॥
अधम कुलेते यदि विष्णु-भक्त हय।
तथापिह सेइ से पूज्य सर्वशास्त्रे कय॥
उत्तम कुलेते जन्म श्रीकृष्ण ना भजे।
कुले तार कि करिबे नरकेते मजे॥
एइ सब वेद वाक्य साक्षी देखाइते।
जन्मिलेन हरिदास अधम कुलेते॥

(चैतन्य भागवत आ० १६।२३७-२४०)

ठाकुर हरिदास चारों वर्णोंके बहिर्भूत-यवनकुलमें आविर्भूत होने पर भी परम-पावनकारी एवं पवित्रतम हैं—

'गङ्गा ओ वाञ्छेन हरिदासेर मज्जन।'

पुण्यवान् ब्राह्मण एवं दिव्य सूरि लोग भी हरिदास ठाकुरके स्पर्शकी वांछा करते हैं—

'हरिदास स्पर्श वांछा करे देवगण।'

और भी कहा गया है—

"स्पर्शेर कि दाय देखिलेइ हरिदास।
छिण्डे सर्वजीवेर अनादि-कर्म पाश ॥"

तब वैष्णव विद्वेषी "डङ्क विप्र" या "हरिनदी ग्रामका दुर्जन ब्राह्मण" या "रामचन्द्र खान" का मंगल नहीं होता। सभी व्यक्तियोंका निस्तार है, किन्तु वैष्णवोंमें जाति-बुद्धि करनेवाले वैष्णव-विद्वेषीका निस्तार नहीं है।

श्रीवृन्दावनदास ठाकुर और भी कहते हैं—

हरिदास आश्रय करिबे जेइ जन।
तारे देखिले ओ खण्डे संसार-बन्धन ॥
सकृत् जे बलिबेक 'हरिदास' नाम।
सत्य सत्य से जाइबेक कृष्णधाम ॥

(चैतन्य भागवत आ० १६वाँ आ०)

ठाकुर हरिदास चारों वर्णोंके बहिर्भूत मनुष्यकुलमें उत्पन्न न होकर यदि पशु या असुर कुलमें भी उत्पन्न होते, तो भी वे समग्र ब्राह्मणोंके पूज्य हैं। श्रील नरोत्तम ठाकुर, श्रील दास गोस्वामी प्रभु यदि अत्यन्त ऊँचे कुलमें उदित न होकर सर्वापेक्षा नीच कुलमें भी प्रकटित होते, तथापि वे गोस्वामी जगद्गुरु ही हैं—सारे ब्रह्मज्ञ ब्राह्मणोंके मुकुटमणि गुरुदेव हैं। श्रील झडू ठाकुर भूँइमाली कुलमें, श्रील उद्धारण दत्त ठाकुर सुवर्ण वणिक् कुलमें, श्रील श्यामानन्द प्रभु सद्गोप कुलमें, श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु खण्डाइत कुलमें आविर्भूत होनेके कारण ही वे लोग तत्तज्जाति या कुलके कोई व्यक्ति नहीं हैं। वर्त्तमान शुद्ध भक्ति प्रचारके मूल पुरुष गौरजन ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर संभ्रान्त आभिजात्यसम्पन्न आढ्य वंशमें अवतीर्ण न होकर यदि सर्वापेक्षा हीन कुलमें भी आविर्भूत होते, या गौड़मण्डल में ही क्यों, भारतवर्षके पाण्डव परित्यक्त, गङ्गा-हरिनाम विवर्जित किसी देशमें अवतीर्ण होते, यदि कामेस्काट्का या लेपलेण्ड प्रदेशमें भी उदित होते, तथापि उनकी ऐकान्तिक वैष्णवताके कारण वे देश-काल-जाति या वर्णसे अतीत हैं, कर्मकाण्डीय विचारसे अतीत हैं, सभी प्रकारके अक्षज प्रापंचिक विचारसे अतीत राज्यमें अवस्थित हैं—

"स च पूज्यो यथाह्यहम् "

वे स्वयं भगवानके अभिन्न कलेवर, एवं भगवानकी तरह ही पूज्य हैं। वे श्रील व्यासदेव और आचार्य श्रील जीव गोस्वामी प्रभुपादके विचारसे—

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते।
सत्रयाजी सहस्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः ॥
सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते।
वैष्णवानां सहस्रेभ्यः एकान्त्येको विशिष्यते ॥
(श्रीभक्तिसन्दर्भ १११ संख्याधृत गारुड़वचन)

अर्थात् सहस्र ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एक याज्ञिक ब्राह्मण श्रेष्ठ है, सहस्र याज्ञिक ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एक सर्ववेदान्त-शास्त्रज्ञ ब्राह्मण श्रेष्ठ है, एक कोटि वेदान्त पारदर्शी ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एक वैष्णव श्रेष्ठ है। ऐसे सहस्र वैष्णवोंमें से एक एकान्ती अर्थात् सर्वक्षण विष्णुको छोड़कर एक मुहूर्त्तके लिए कर्म, ज्ञान, योग या अन्याभिलाषादि या अन्य देवताओंकी उपासना नहीं करते, ऐसे शुद्ध वैष्णव श्रेष्ठ हैं। श्रील जीव गोस्वामी

प्रभुने श्रीहरिभक्तिविलास ग्रन्थमें पाद्मवचन उद्धारपूर्वक बतलाया है—

महाकुलप्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥
सहस्रशाखाध्यायी च,न गुरुस्यादवैष्णवः ॥
विप्रक्षत्रियवैश्याश्च गुरवः शूद्रजन्मनाम् ।
शूद्राश्च गुरवस्तेषां त्रयाणां भगवत्प्रियाः॥

अर्थात् महान् कुलमें उत्पन्न होकर भी, सर्व यज्ञोंमें दीक्षित होने पर भी या वेदोंके सहस्रों शाखाओंके अध्ययन करने पर भी अवैष्णव होने पर गुरु नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन तीनों वर्णोंके व्यक्ति शूद्रोंके गुरु हैं। शूद्र लोग भगवानके भक्त होने पर उक्त तीनों वर्णोंके गुरु हैं।

श्रील नरोत्तम ठाकुर, श्रील श्यामानन्द प्रभु आदिने इन सभी वाक्योंका आचरण कर प्रचार किया है। जगत-उद्धारके लिए यवन कुलमें अवतीर्ण श्रील हरिदास ठाकुरने आभिजात्यसम्पन्न कुलीनग्रामी सत्यराज खान आदिके आचार्यका कार्य कर उक्त शास्त्र वाक्योंका प्रचार एवं मर्यादा-संरक्षण किया है। श्रील दास गोस्वामी प्रभु षड्-गोस्वामीके अन्यतम रूपमें श्रीमन्महाप्रभु द्वारा जगतमें प्रतिष्ठित रहकर सारे वैष्णव जगतके आचार्यगुरुके रूपमें नित्य पूजित और नमस्कृत हो रहे हैं।

वैष्णव लोग तुच्छ पाप या पुण्यफलसे किसी भी नीच या उच्च जातिमें आविर्भूत नहीं होते। परन्तु भगवदिच्छासे दूसरे जीवको उत्साह प्रदान करने के लिए ही नीच कुलादि में प्रकट होते हैं। आज यदि श्रीरूप-सनातन प्रभु, दास गोस्वामी प्रभु, जीवगोस्वामी प्रभु, राय रामानन्द, शिखि माहिति, नरोत्तम ठाकुर, उद्धारण ठाकुर, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराज, श्रील गौरकिशोर प्रभु आदि आचार्य वैष्णव-राजगण विभिन्न कुलमें अवतीर्ण होकर कर्म-काण्डीय माहात्म्यमय जातिकुलकी निरर्थकता का प्रचार नहीं करते, भक्तराज खोलाबेचा (केलेके फूल, डंठल आदि बेचनेवाले) श्रीधर आदि यदि प्राकृत ऐश्वर्यकी हेयता और भक्तोंकी अनन्ताद्भुत ऐश्वर्यकी महिमा जगतमें विघोषित नहीं करते, तो अनादि बहिर्मुख कर्मप्रवण जीवोंकी मति भक्ति-भक्त-भगवानके प्रति नहीं लगकर कर्मकाण्डीय नास्तिकता एवं अपराधरूपी कीचड़में और भी प्रबल वेग से डूब जाती।

श्रीमदभागवतमें कहा गया है—

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ।
न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥

(भा० १।११।३३)

प्रकृतिस्थ होकर भी उसके गुणोंके वशी-भूत न होना ही ईश्वर अर्थात् समर्थ पुरुषकी ईशिता है। मायाबद्ध जीवकी बुद्धि जब ईशाश्रया होती है, उस समय वह मायाके निकट होने पर भी मायागुणोंसे विकारप्राप्त या संयुक्त नहीं होती।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(नामकीर्त्तन)

१—शुद्ध हरिनाम-कीर्त्तनकारीमें क्या-क्या लक्षणोंका रहना आवश्यक है ?

"निरपराधेन हरिनामकृतं विषयविरक्ति-जनितदैन्यं, निर्मत्सरतालङ्कृता दया, मिथ्याभिमानशून्यता, सर्वेषां यथायोग्यं सम्मानना—चैतानि लक्षणाणि ।"

—श्री शि०—सं० भा० ३

अर्थात् निरपराधपूर्वक हरिनाम करनेसे विषयोंसे विरक्ति होनेके कारण उत्पन्न स्वाभाविक दैन्य, निर्मत्सरताद्वारा अलङ्कृत दया, मिथ्या या वृथा अभिमानका सर्वथा अभाव, सभी जीवोंका यथायोग्य सम्मान—ये सभी लक्षण शुद्ध हरिनाम कीर्त्तनकारीमें रहना आवश्यक है।

२—हरिकीर्त्तन किस प्रकारकी क्रम-पद्धतिद्वारा प्रपञ्चमें विजय प्राप्त करते हैं ?

"जातया श्रद्धया गुरुचरणाश्रयरूप-सत्सङ्गप्रभावात् तत्वश्रवणं घटते । श्रवणानन्तरं यदा तत्कीर्त्तनं भवति, तदा मायादमनप्रक्रियारूप-जीवविक्रम एव लक्ष्यते—प्रपंचे हरिकीर्त्तनविजयस्यैषा प्रक्रिया ।"

—श्री शि०—सं० भा० १

अर्थात् श्रद्धाके उदय होने पर गुरुचरणाश्रयरूप सत्सङ्गके प्रभावसे तत्वश्रवणको प्राप्ति होती है । श्रवण करनेके पश्चात् जब भगवन्नाम-गुण-लीलादिका कीर्त्तन होता है, तब मायादमनरूपी प्रक्रिया स्पष्ट देखी जाती है। यही जीव विक्रमका प्रकाश है । प्रपञ्चमें हरिकीर्त्तनके विजयकी यही प्रक्रिया है ।

३—संकीर्त्तनका क्या तात्पर्य है ?

"संकीर्त्तनादिका प्रयास—केवल निष्कपट रूपसे हृदय उद्घाटनपूर्वक प्रभुके नामोंका उच्चारण करना ही है ।"

—'प्रयास' स० तो० १०।९

४—किस विधिका अवलम्बन करनेपर विषय-प्रतिबन्धक दूर होकर नामानुशीलनका नैरन्तर्य साधित होता है ?

"पहले कुछ थोड़ेसे समयके लिए निर्जनमें एकाग्र होकर नाम करना चाहिए । क्रमशः नामसंख्याकी वृद्धि करते-करते नामानुशीलन का नैरन्तर्य एवं विषय-प्रतिबन्धकका क्षय—ये दोनों प्रक्रियाएँ अवश्य होंगी ।"

—'भजनप्रणाली' ह० चि०

५—अनर्थग्रस्त साधकोंके लिए नामानुशीलनमें कौनसा उपाय अवलम्बन करना चाहिए ?

"प्रतिदिन निर्जनमें कुछ समयके लिए विषय-उत्पात परित्यागकर भावके सहित नाम करना चाहिए। क्रमशः इस कार्यके समयमें वृद्धि करनी चाहिए । आखिरमें सब समयमें

ही अद्भुत भावका उदय होगा। तब उत्पात निकट आनेमें भय करेंगे।"

६—निरन्तर नाम कीर्त्तन किसे कहते हैं?

"निद्राकालको छोड़कर देहव्यापारादिके निर्वाह-कालमें एवं दूसरे समय सर्वदा श्रीनाम कीर्त्तन करनेका नाम ही निरन्तर नाम-कीर्त्तन है।"

— जै० ध० २३वाँ अ०

७—श्रीतुलसीके संस्पर्शमें कैसी बुद्धिसे युक्त होकर हरिनाम ग्रहण करना चाहिए?

"तुलसी हरिप्रिय वस्तु हैं, इसलिए उनके संस्पर्शमें नाममें अधिक बलका अनुभव किया जा सकता है। नाम करते समय कृष्णके स्वरूप और नाममें अभेद बुद्धिपूर्वक नाम करना ही चाहिए।"

— जै० ध० २३वाँ अ०

८—आर्त्तिहीन होकर अधिक नामग्रहण क्या श्रेयस्कर है?

"नाम अधिक संख्यामें होगा—इस चेष्टा की अपेक्षा निरन्तर स्पष्टाक्षरसे भावयुक्त नामकीर्त्तन हो—इसीके लिए यत्न करना अत्यन्त आवश्यक है।"

—'प्रमाद' ह० वि०

९—जगतमें किस धर्ममें सर्वधर्मोंकी परिणति होगी?

"जगतमें जितने प्रकारके भी धर्म हैं, वे सभी ही परिपक्वावस्थामें एक नाम-संकीर्त्तन धर्ममें परिणत हो जायेंगे—यह निश्चय-सत्य जान पड़ता है।"

—'नित्य धर्म सूर्योदय', रा० तो० ४।३

१०—श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके सम-सामयिक कालमें कलकत्तेमें किस समय प्रथम हरिसंकीर्त्तन प्रचारित हुआ? शुद्ध रूपसे हरिकीर्त्तन कैसे अनुष्ठित हो सकता है?

"श्रीगौराङ्ग-समाजके नेताओंके मनमें एक भावका उदय हुआ; उस भावद्वारा चालित होकर नगरवासियोंकी सहायतासे बिडन स्ट्रीटमें श्रीमन्महाप्रभुके जन्म दिनमें प्रथम संकीर्त्तन हुआ। अनेकानेक वृद्ध लोगोंके मतानुसार ऐसा संकीर्त्तन-महोत्सव कलकत्ता महानगरीमें पहले कभी नहीं हुआ।

क्या पाषण्ड, क्या भगवद्भक्त—सभीने ही एक मनसे श्रीनाम-संकीर्त्तनमें योग दिया था। श्रीमन्महाप्रभुके जन्म दिनमें इस प्रकार समारोहसे सभी देशोंमें नामकीर्त्तन होना आवश्यक है। उस महोत्सवसे नगरवासी लोग कीर्त्तनप्रिय हो उठे। इसकी तो क्या बात है, दूसरे सभी कार्योंका परित्याग कर बहुत धन व्यय कर प्रत्येक पल्लीमें एक-एक कीर्त्तन-दल स्थापित हुआ।

यह बड़े सुखकी बात है कि भारतके सर्वप्रान्तीय व्यक्ति लोगोंने कलकत्तामें रह कर श्रीनाम-कीर्त्तनमें योग दिया है। विशेषतः पश्चिम भारतके लोग—जिन्होंने कभी भी श्रीमन्महाप्रभुका नाम नहीं सुना था, वे श्रीहरिनामकीर्त्तनमें योग देकर श्रीगौराङ्ग-नित्यानन्द नाममें उन्मत्त हो गये हैं। बड़े बाजारके बहुतसे दुकानदार और दलाल आदि पश्चिम भारतीयोंने बहुत यत्न और अर्थव्ययके द्वारा नगर-कीर्त्तनका अनुष्ठान किया है। कलकत्तेकी प्रत्येक पल्लीके निवासियोंने अपने अपने पल्लीमें महासमारोह के साथ कीर्त्तन किया है।

हम लोग श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके जन्मदिन में कीर्त्तनकी जन्मभूमि श्रीमहाप्रभुके जन्म-स्थान श्रीनवद्वीप मायापुरमें जन्म-महोत्सवमें नियुक्त थे। कुछ दिन पश्चात् कलकत्तेमें

आकर + + कुछ कीर्त्तन देखकर हमारे मनमें यही भाव उठा कि + + जिस कलकत्तामें धर्म एकबार ही बिलकुल लोप हो रहा था, उसी कलकत्तामें महाप्रभुजीकी शक्तिसे सभी धर्मोंका सार धर्मरूप हरिकीर्त्तन वही प्रबल हुआ है । किन्तु श्रीमन्महाप्रभुने इन सभी कार्योंमें उत्साह देकर भी उनका अत्यन्त गुप्त रहस्यरूप प्रेम, उसे इस महानगरीमें वितरण नहीं किया । यथेष्ट उत्साह दिया है, अपनेको प्रचार करनेके लिए सभी प्रकारके लोगोंको मति दी है, अन्यान्य सुख-परित्यागकी शक्ति भी दी है । किन्तु विशुद्ध प्रेमभक्तिका द्वार उद्घाटन नहीं किया । कीर्त्तनकारियोंके हृदयमें कीर्त्तन-स्पृहा दी है । किन्तु पूर्व-पूर्व महाजनोंके पथमें अनुगत होनेकी प्रवृत्ति आज भी नहीं दी । चमड़े का पादत्राण छोड़ कर अनेक व्यक्ति खोल-करतालादिके साथ कीर्त्तन कर रहे थे, परन्तु बहुतसे व्यक्तियों के गलेमें तुलसीमाला नहीं देखी । यदि कोई कोई धारण किए हैं, वे भी नई मालाएं हैं, हैं, उससे बहुत प्रकारके सन्देहका उदय होता है । बहुतसे लोगोंके शरीरमें द्वादश तिलककी शोभा नहीं हो रही है । आज नीमतला घाटमें, कल जोड़ाशाकोंमें, दूसरे दिन झामापुकुरमें महाजन प्रणालीसे कीर्त्तन-श्रवणकी इच्छासे जाकर देखा; परन्तु कहीं भी वैसा नहीं देख पाया ।

नेड़ा, बाउल, यात्रा, थियेटर—इन सभी स्वरोंमें रङ्गमंचमें गान सुना । उससे हमें जिस परिमाणमें दुःख हुआ, उन सभीमें 'हरि', 'कृष्ण', 'राम'—ये सभी नित्यनाम सुनकर थोड़ा बहुत दूर हुआ । जिनके हृदयमें प्रेमभक्ति है, वे प्रायः ही प्राचीन स्वरको ही पसन्द करते हैं । वे लोग अनावश्यक बहिरङ्ग बातोंका गान करने या सुननेके अनिच्छुक हैं । वे प्राचीन पद्धति द्वारा शुद्ध हरिनामका गान एवं श्रवण करते हैं । इस महानगरीके पल्लीवासी लोग आजकल सत्सङ्गके अभावमें शुद्धभक्तिका स्वभाव सहज ही प्राप्त नहीं करते । अतएव वे लोग स्वकपोल कल्पित पद्धति अवलम्बन करते हैं । जो भी हो, हमारे श्रीगौराङ्ग महाप्रभु बड़े ही दयालु हैं । उन्होंने जब कलकत्ता महानगरीके प्रति थोड़ासा दृष्टिपात कर कीर्त्तनमें मति दी है, तब हम लोग यह विश्वास करते हैं कि महानगर-वासियोंके हृदयमें क्रमशः शुद्धभक्तिका संचार करेंगे । कुछ लोग कहते हैं कि नगरवासियोंने प्लेगके आक्रमण होने पर इस कीर्तन प्रथाका आविष्कार किया है । + + + जो सभी व्यक्ति कीर्त्तन विरोधी हैं, वे देश या राष्ट्रके परम शत्रु हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं । हमारी एक और प्रार्थना है । संकीर्त्तन हो, किन्तु पर्व दिन अवलम्बन करना आवश्यक है । दर्श-पूर्णिमा, एकादशी, गौर-पूर्णिमा, कृष्ण-जन्माष्टमी, कार्त्तिकमास, वैशाख-मास, भगवानकी सभी यात्राएँ, संक्रान्ति—ये सभी पर्व दिन अवलम्बन कर हरिकीर्त्तन होने पर बहुत उत्तम है । प्राचीन महाजनोंके स्वरमें मृदङ्ग-करतालादि प्राचीन यन्त्र लेकर स्वयं पवित्र एवं वैष्णव-भावापन्न होकर श्रीनाम-कीर्त्तन कर नगरवासी लोग हमारे हृदयको परमानन्द प्रदान करें । + + + श्रीगौराङ्ग-देव जगद्गुरु हैं । वे उन्हें इच्छानुसार फल अवश्य प्रदान करेंगे ।"

—'कलकत्तामें कीर्त्तन' स० तो० ११।३

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

(भक्तिसन्दर्भ—१२)

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिनाम् ।
यत् सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम् ॥
(भा० ११ । २९ । २२)

इस नश्वर मनुष्य शरीरमें रहकर भी मनुष्य इस जन्ममें ही सत्य और अविनश्वर-स्वरूप मुझे प्राप्त कर ले, यही बुद्धिमान व्यक्तियोंकी बुद्धिमत्ता और मनीषा अर्थात् विवेक और चतुरताका चरम फल है।

श्रीधर-टीका—अतएव मेरा भजन ही बुद्धि अर्थात् विवेक एवं मनीषा अर्थात् चातुर्यका फल है। बुद्धि और मनीषा कैसी है ?—सत्य और अमृतस्वरूप मुझे जीव असत्य मर्त्य या विनाशी मनुष्य देहसे (प्राकृत देहके रहते समय) इस जन्ममें ही प्राप्त करे, यही बुद्धि और मनीषा है।

भागवत १०म स्कन्ध, ७२ अध्यायमें लिखित है—हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, मुद्गल, शिवि, कबूतर, व्याध इत्यादि बहुतसे जीव इस अनित्य शरीरको धारण कर भी अविनाशी पदको प्राप्त हुए थे। प्राकृत मर्त्यदेह धारण कर भी अप्राकृत भगवद्भजनबुद्धिके बलसे ही परिवर्त्तनशील स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंकी उपेक्षा कर सिद्धदेहकी नित्य चिन्मय इन्द्रियों द्वारा भगवत्सेवाको प्राप्त किया जा सकता है। जो लोग प्राकृत देह और बुद्धिका आश्रय लेकर प्राकृत नश्वर वस्तुओंकी सेवामें व्यग्र हैं, उन्हें बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वे लोग समग्र चतुरताका एकमात्र चरमफलरूपी भगवत्सेवा प्राप्त नहीं कर सकते।

महाराज हरिश्चन्द्र महर्षि विश्वामित्रके ऋण-परिशोध करनेके लिए अपनी भार्या और पुत्र आदिका विक्रय कर स्वयं चण्डालता प्राप्त करके भी दुःख न समझकर अयोध्यावासी प्रजाओंके साथ स्वर्ग चले गये थे।

(मार्कण्डेय-पुराण)

राजा रन्तिदेव कुटुम्बके व्यक्तियोंके साथ अड़तालीस दिन निरम्बु उपवास रहकर भी पश्चात् कुछ अन्नजल प्राप्त कर उसे प्रार्थियों को प्रदान कर ब्रह्मलोक चले गये।
(भा० १० । २१ और महाभारत, द्रोणपर्व)

उञ्छवृत्ति मुद्गलने कुटुम्बके व्यक्तियोंके साथ छः मास तक अन्नाभावसे दुर्बल रहने पर भी आतिथ्य प्रदान करनेके कारण ब्रह्मलोकमें गमन किया।

(महाभारत, वनपर्व २५९—६०वाँ अध्याय)

उशीनरपुत्र शिबिने शरणागत कबूतरकी रक्षाके लिए अपने शरीरका माँस बाजको प्रदान कर स्वर्गलोकको प्राप्त किया।

(महाभारत, वनपर्वके तीर्थयात्रा प्रसङ्गमें)

बलि महाराजने वामनदेवको अपना सर्वस्व आत्मसमर्पण कर उनका पादपद्म प्राप्त किया। (भा० ८ । २२)

कबूतरने अपने अतिथि व्याधको सह-धर्मिणी कबूतरीके साथ अपना मांस प्रदान कर दिव्य विमान पर चढ़कर स्वर्गमें गमन किया।

(महाभारत, शान्तिपर्व १४३—१४९ अध्याय)

उसी व्याधने उनका सत्त्वगुण एवं त्याग देखकर स्वयं अत्यन्त विरक्त होकर महाप्रस्थान किया एवं दावाग्निमें अपने शरीरको जलाकर निष्पाप होकर स्वर्गमें गमन किया।

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥
(भा० १२।४।४०)

श्रीपरीक्षित्के प्रति श्रीशुकदेवजीके उपदेशके उपसंहारमें भी श्रवणाख्या भक्तिको लक्ष्य कर कहा गया है—विविध दुःख-रूप दावानल-पीड़ित, अति दुस्तर संसार सागरके पार जानेके अभिलाषी व्यक्तिके लिए पुरुषोत्तम श्रीहरिकी लीलाकथाका रस-आस्वादन छोड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। अतएव अन्य बातोंका परित्याग कर एकमात्र हरिकथा-श्रवण ही करना चाहिए।

दूसरे दूसरे भक्त्यङ्गसमूहका भी श्रवणाख्या भक्तिमूलमें ही प्रवृत्ति होनेके कारण श्रवणाख्या भक्तिके बिना अन्यान्य उपायोंद्वारा संसार-पार करना असंभव है।

महाराज परीक्षित्ने मुनिशाप श्रवणके पूर्व ही स्वर्ग और मर्त्यलोकादिकी हेयता विचार कर श्रीकृष्ण भजनको ही परम पुरुषार्थ जान लिया था एवं परवर्त्तीकालमें शाप श्रवणानन्तर तुरन्त ही समस्त विषयादि चिन्तासे निवृत्त होकर गङ्गातटमें प्रायोपवेशन किया। वे मुनिव्रत धारण कर इन्द्रियभोग्य असत्वस्तुमात्रका ही परित्याग कर एकान्त-भावसे भगवान् मुकुन्दके पादपद्मोंका ध्यान करने लगे। भगवन्निष्ठाके प्रभावसे उनका मरणभयराहित्य उनके अपने वाक्यसे ही जाना जाता है—हे मुनिगण! मैं श्रीहरिमें एकान्त समर्पितचित्त हो गया हूँ। ब्राह्मण प्रेरित तक्षक ही हो या कुहक ही क्यों न हो, मुझे यथेष्ट दंशन करे। मैं उससे भीत नहीं हूँ। आप लोग भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका गान कीजिए।

श्रीशुकदेवजी द्वारा ज्ञानोपदेश देनेके पश्चात् भी परीक्षित्जीने कहा था—

सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना।
श्रावितो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः॥
नात्यद्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम्।
अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः॥
पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो वयम्।
यस्यां खलूत्तमश्लोको भगवाननुवर्ण्यते॥
(भा० १२।६।२-४)

हे प्रभो! आप दयार्द्रचित्त हैं। आपने मुझपर अनुग्रह किया है। अतएव मैं कृतार्थ हुआ। क्योंकि आपने मुझे अनादि और अनन्तमहिम साक्षात् भगवान् श्रीहरिकी कथा श्रवण कराया है। त्रितापदग्ध अज्ञ व्यक्ति या प्राणियोंके प्रति महत् और अच्युतात्म अर्थात् विष्णुभक्तोंका जो अनुग्रह है, उसे मैं महाश्चर्य नहीं समझता, अर्थात् वह नितान्त ही स्वाभाविक है। जिसमें भगवान् उत्तमःश्लोक श्रीहरिकी कथाएँ वर्णित हैं, वह सात्वत पुराणसंहिता श्रीमद्भागवत मैंने आपके निकटसे श्रवण किया।

भगवान्के पादपद्मोंके दर्शन-सुखके अन्तर्भुक्त ही ज्ञान-विज्ञानकी भी सिद्धि है, यह श्रीपरीक्षित् स्वयं कहते हैं—

अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया।
भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम्॥
(१२।६।७)

ज्ञान-विज्ञान निष्ठाद्वारा मेरा अज्ञान पूर्णतया दूर हो गया है, क्योंकि आपने कृपा कर मुझे परम मंगलमय भगवानके पादपद्मों का दर्शन कराया है।

इसी बातको आगे सूतजी और भी स्पष्ट करते हैं—

ब्रह्मकोपोत्थिताद् यस्तु तक्षकात् प्राणविप्लवात्।
न संमुमोहोरुभयाद् भगवत्यर्पिताशयः ॥
नोत्तमःश्लोकवार्त्तानां जुषतां तत्कथामृतम्।
स्यात् संभ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ॥
भा० १। १८। २, ४)

भगवानमें सर्वान्तःकरण समर्पित होनेके कारण महाराज परीक्षित् ब्राह्मण-कोपसे उत्पन्न प्राणनाशक महासर्पसे भी मोह प्राप्त नहीं हुए। उनका ऐसा आचरण विचित्र नहीं है; क्योंकि जो लोग उत्तमःश्लोक भगवान् श्रीहरिकी कथामें निविष्टचित्त एवं सर्वदा भगवत्कथामृत पान और उनके चरणकमलों का स्मरण करते हैं, उन्हें अन्तिम समय प्राणत्याग कालमें भी मोह नहीं होता।

अतःपर ज्ञानादिका अनादर कर श्रीहरि के कीर्त्तनादिमें ही मनोनिवेश करना चाहिए, यह बात कह रहे हैं—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न ह्यर्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥
यशःश्रियामेव परिश्रमः परो
वर्णाश्रमाचारतपःश्रुतादिषु।
अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयो-
र्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः ॥
अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं
ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥
(भा० १२। १२। ५२—५४)

उपाधिनिवर्त्तक जो ब्रह्म-प्रकाशक ज्ञान है, वह भी यदि अच्युतभाव रहित हो, अर्थात् विष्णु भक्तिविहीन हो, तो उसकी शोभा नहीं होती अर्थात् अपरोक्ष ज्ञानमें वह पर्यवसित नहीं होता। इसलिए वह कर्म जो ईश्वरके लिए अर्पित नहीं होता अर्थात् जो भगवन्निमित्त नहीं होता, वह अभद्र अर्थात् अमंगलजनक और अकारण ही किया जाता है।

वर्णाश्रमाचार, तपस्या और वेदाध्ययनादिमें जो महान् परिश्रम स्वीकार किया जाता है, वह केवल कीर्ति और सम्पदमें ही आबद्ध है अर्थात् हेय नश्वर प्रतिष्ठा और अर्थ ही उसका फल है, नित्य परमपुरुषार्थ नहीं। किन्तु श्रीहरिकी लीलाकथा श्रवणादि क्रियाओंमें जो परिश्रम है, उसके फलसे भगवान् श्रीहरिके पादपद्मोंकी विस्मृतिका नाश अर्थात् नित्य स्मृति प्रकटित होती है। पुनः कृष्णपादपद्मोंकी अविस्मृति अर्थात् नित्य स्मरण सभी प्रकारके अमंगलका नाश करता है, नित्य कल्याण विस्तार करता है, जीव-हृदयकी सत्त्वशुद्धि, परमात्म-भक्ति एवं शुद्धविज्ञान और विरागविशिष्ट शुद्ध भगवज् ज्ञानको प्रकट करता है।

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥
(भा० ६। ३। २२)

भगवानके शुद्ध नामादि ग्रहणके द्वारा उनमें जो भक्तियोग है, वही जीवमात्रका परम धर्म है। पुंसां—जीवमात्रका ही परम या सार्वभौम धर्म है। इसकी अपेक्षा अधिक या श्रेष्ठ और कोई धर्म नहीं हो सकता। 'एव' शब्दसे अन्य साधनोंका निषेध है।

'भगवानमें' यह बात प्रयोग द्वारा कहा गया है कि नाम ग्रहणादि भी कर्म-ज्ञान अर्थात् धर्मार्थकाममोक्षादिके लिए प्रयुक्त होनेपर वैसे धर्मकी श्रेष्ठता नहीं है। क्योंकि भगवत्प्रीतिके बिना तुच्छ फल प्राप्त करनेके लिए प्रयुक्त होनेपर वैसे नामग्रहण आदि नामापराधके ही अन्तर्गत हैं।

सध्रीचीनो ह्ययं लोके पन्थाः क्षेमोऽकुतोभयः।
सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः॥
(भा० ६। १। १७)

पुनः कहा गया है—जगतमें यह भगवद्-भक्तिमार्ग ही समीचीन या सर्वोत्कृष्ट पथ है। यह परम मंगलप्रद, भयरहित, अर्थात् अभयदानकारी है। नारायणपरायण कृपालु निष्काम भक्त लोग इसी पथपर विचरण करते हैं।

श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य
नन्वञ्जसा सूरिभिरीड़ितोऽर्थः।
यत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्द-
पादारविन्दं हृदयेषु येषाम्॥
(भा० ३। १३। ४)

विदुरजी मैत्रेयजीसे कहते हैं—हे मुनिवर! जिनके हृदयमें भगवान् मुकुन्दके पादपद्म विराजित हैं, उन सभी भक्तोंकी गुणकथाका बारम्बार श्रवण ही पुरुष लोगोंका (जीवोंका) बहु आयाससाध्य वेदाध्ययनका फल है—ऐसा विद्वान् लोग प्रशंसा और प्रीतिके साथ कहा करते हैं।

अतएव भक्तोंके गुणश्रवण द्वारा भगवान् मुकुन्दका ही गुणानुश्रवण—समस्त वेदाध्ययन का फल होता है, यही भावार्थ है। और भी अन्यत्र कहा गया है—

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्त्तव्यो न जातुचित्।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः॥
(पद्मपुराण, बृहत् सहस्रनाममें)

आलोच्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेव सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥
(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्डमें एवं लिङ्गपुराणमें)

इति विद्या तपो योनिरयोनिर्विष्णुरिड़ीतः।
ब्रह्मज्ञस्तपते देवं प्रीयतां मे जनार्दनः॥
(श्रीमद्भागवत)

सर्वदा विष्णुका ही स्मरण करना चाहिए—यही शास्त्रोंकी विधि है। उन्हें कदापि नहीं भूलना चाहिए—यही निषेध है। अन्यान्य सभी विधि-निषेध इसी मूल विधि-निषेध के ही अनुगामी किङ्कर हैं।

समस्त शास्त्रोंका आलोड़न एवं पुनः पुनः विचार कर यही बात सुनिष्पन्न हुई है कि श्रीनारायण ही जीवोंके सर्वदा परम ध्येय हैं।

इस विद्या और तपस्याके मूल, सर्वकारणकारण जिन विष्णुका सभी स्तव करते हैं ब्रह्मज्ञ व्यक्ति जिनकी तपस्या करते हैं, वे ही जनार्दनदेव मेरे प्रति सन्तुष्ट होवें।

दान-व्रत-तपो-होम-जप-स्वाध्यायसंयमैः।
श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते॥
(भा० १०। ४७। २४)

जन्मकोटिसहस्रेषु पुण्यं यैः समुपार्जितम् ।
तेषां भक्तिर्भवेत् शुद्धा देवदेवे जनार्दने ॥
(बृहन्नारदीय-पुराण)

व्रतोपवास-नियमैर्जन्मकोट्यप्यनुष्ठितैः ।
यज्ञैश्च विविधैःसम्यक् भक्तिर्भवति माधवे ॥
(अगस्त्य-संहिता)

अतएव शास्त्रोंमें जिस वर्णाश्रमाचारका विधान है, उसका अतुलनीय फल भी केवल भगवद्भक्ति है, ऐसा कह रहे हैं-- दान, व्रत, तपस्या, होम, जप, स्वाध्याय (वेदाध्ययन), संयम इत्यादि अन्यान्य नानाविध भगवद्-उद्देशक मंगलजनक उपायों द्वारा कृष्णभक्ति ही साधित होती है। अर्थात् कृष्णभक्ति ही इन सभी भगवद्-उद्देशक कर्मोंका फल है । दानादि कर्मके अर्थमें श्रीकृष्ण-अर्पित कर्म जानना होगा। मनुष्यों के जन्म-कर्मादि जो कुछ भी हरिसेवामें नियुक्त हों, उनकी ही सार्थकता है।

जो व्यक्ति सहस्रकोटि जन्मोंमें पुञ्ज-पुञ्ज सुकृति भली प्रकारसे किये हैं, उनकी ही देव-देव जनार्दनमें शुद्धाभक्ति उदित होती है। कोटि कोटि जन्मोंतक जिन व्रत, उपवास और नियमादिका पालन हुआ है, उसके द्वारा एवं विविध यज्ञोंद्वारा भगवान माधवमें सम्यक् प्रकारसे भक्ति होती है।

पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिन-
स्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीता
प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥
(भा० १०.१४।५)

हे भूमन् (अपरिच्छिन्न पुरुष) ! इस जगतमें पूर्वकालमें योगियोंने योग अवलम्बन करके भी योगादि ज्ञानद्वारा आपको प्राप्त न होकर, उनकी लौकिकी चेष्टा एवं अपने अपने सभी कर्म आपमें अर्पण कर आप भगवान्‌की कथामें रुचिरूपी भक्ति प्राप्त की थी । 'कथोपनीता' अर्थात् भगवत्-कथा प्रभावसे भगवत् सान्निध्यकारिणी कीर्त्तनीया रुचिरूपा भक्ति प्राप्त की थी । इन दोनों प्रकारकी भक्तिद्वारा उन्होंने आत्म-तत्वसे भगवत् तत्व तक समस्त तत्व अनुभव कर आपकी परम अन्तरङ्गा गति प्राप्त की ।

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम् ।
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं त्वच्चरणार्चनम् ॥
(भा० १०।८१।१९)

जिस स्थलमें धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष आदि प्राप्तिके लिए जो सभी उपाय बतलाये गये हैं, वे भी उसी प्रकार भक्तिमूलक हैं । यथा मनुष्योंके स्वर्ग और मोक्षमें एवं भूतलमें और पातालमें जो सभी सम्पद् हैं, उन सभी सिद्धियोंका मूल उनकी पादपद्म-पूजा है ।

विष्णुभक्तिविहीनानां श्रौताः स्मार्त्ताश्च या क्रियाः ।
कायक्लेशः फलं तासां स्वैरिणी व्यभिचारवत् ॥
(स्कन्द-पुराण)

जिस प्रकार एक व्यभिचारिणी कामिनी बहुतसे परपुरुषोंके मनोरञ्जनरूप चेष्टा करने पर भी किसी भी पुरुषकी मनोवांछापूर्त्ति या संतोष उत्पादन नहीं कर सकती, उसी प्रकार विष्णु भक्तिरहित व्यक्तियोंकी जो सभी स्मार्त्त और श्रौत क्रियाएँ देखी जाती हैं, उन सभी क्रियाओंका फल केवल वृथा दैहिक परिश्रममात्र है ।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीचैतन्य—शिक्षामृत

रसविचार—प्रथम धारा

[वर्ष १६, संख्या ८, पृष्ट १७६ से आगे]

रसरूप प्रक्रियामें निम्नलिखित पाँच पृथक्-पृथक् भावोंका समावेश देखा जाता है—(१) स्थायी भाव, (२) विभाव, (३) अनुभाव, (४) सात्त्विक भाव और (५) संचारी या व्यभिचारी भाव। स्थायी भाव ही रसका मूल है। विभाव रसका हेतु है। अनुभाव रसका कार्य है। सात्त्विक भाव भी रसका कार्यविशेष है। संचारी या व्यभिचार भावसमूह ही उसके सहाय हैं। विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचार भावसमूह स्थायी भावको स्वाद्यत्व अवस्थामें लाकर रसावस्था[1] प्रदान करते हैं। विस्तारसे वर्णित होने पर इन सब विषयोंका उत्तमरूपसे परिज्ञान होगा। किन्तु जब तक साधक लोग रसका आस्वादन नहीं करते, तब तक यह प्रक्रिया आत्मगत नहीं हो सकेगी। रस जाननेका विषय नहीं है, केवल आस्वादनका विषय है। जिज्ञासा और संग्रह—ये दोनों ज्ञानकी प्राथमिक प्रक्रियाएँ हैं। उनकी समाप्ति न होने तक ज्ञानकी चरम प्रतिक्रियारूप आस्वादन[2] प्राप्त नहीं होता। हम लोग साधारणतया जिसे ज्ञान कहते हैं, वह या तो जिज्ञासा है या संग्रह। आस्वादनके बिना रसकी स्फूर्त्ति नहीं होती।

पहले स्थायी भावका विचार करें। दूसरे सभी भावोंको अपने अधीन रखकर जो भाव कर्त्तृत्व प्राप्त है, वही स्थायी भाव[3] है। जात-भाव पुरुषमें जो रति लक्षित

---

१. विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः। स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः॥
एषा कृष्ण रतिः स्थायी भावो भक्तिरसो भवेत्॥ (भक्तिरसामृतसिन्धु)

२. जिज्ञासास्वादनाविधिः। (तत्त्वसूत्रमें)

३. अविरुद्धान् विरुद्धांश्च भावान् यो वशतां नयन्। सुराजेव विराजते स स्थायी भाव उच्यते॥
स्थायिभावोऽत्र स प्रोक्तः श्रीकृष्णविषया रतिः। मुख्या गौणी च सा द्वेधा रसज्ञैः परिकीर्त्तिता॥
शुद्धसत्त्वविशेषात्मा रतिर्मुख्येति कीर्त्तिता। मुख्यापि द्विविधा स्वार्था परार्थाचेति कीर्त्यते॥
अविरुद्धैः स्फुटं भावैः पुष्णात्यात्मानमेव या। विरुद्धैर्दुःशकम्लानि सा स्वार्था कथिता रतिः॥
अविरुद्धं विरुद्धञ्च संकुचयन्ती स्वयं रतिः। या भावमनुगृह्णाति सा परार्था निगद्यते॥
शुद्धा प्रीतिस्तथा सख्यं वात्सल्यं प्रियतेत्यसौ। स्वपरार्थैव सा मुख्या पुनः पञ्चविधा भवेत्॥
वैशिष्ट्यं पात्रवैशिष्ट्याद्रतिरेषोपगच्छति। यथार्कः प्रतिबिम्बात्मा स्फटिकादिषु वस्तुषु॥
सामान्यासौ तथा स्वच्छा शान्तिश्चेत्यादिमा त्रिधा। एषाङ्गकम्पतानेत्रमीलनोन्मीलनादिकृत्॥
किञ्चिद्विशेषमप्राप्ता साधारणजनस्य या। बालिकादेश्च कृष्णे स्यात् सामान्या सा रतिर्मता॥
तत्तत्साधनतो नानाविधभक्तप्रसङ्गतः। साधकानान्तु वैविध्यं यान्ति स्वच्छा रतिर्मता॥
यदा यादृशि भक्ते स्यादासक्तिस्तादृशं तदा। रूपं स्फटिकवद् धत्ते स्वाच्छासौ तेन कीर्त्तिता॥
अनाचान्तधियां तत्तद्भावनिष्ठासुखार्णवे। आर्यानामतिशुद्धानां प्रायः स्वच्छा रतिर्भवेत्॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

होती है, वही कृष्णमें अनन्य-ममता संयुक्त और कुछ परिमाणमें गाढ़ होते-होते ही रसोपयोगी स्थायी भाव हो सकती है। यदि यह रति अपनी निर्दिष्ट सीमा अर्थात् अविमिश्र एकभावत्वका अतिक्रमण कर प्रेमप्रकोष्ठमें पदार्पण करती है, तथापि उसे रति ही कहना होगा। क्योंकि प्रेम असीम होनेके कारण सर्वावस्थामें रतित्वदशामें परिचित नहीं होता। किसी विशेष अवस्थामें प्रेम रसकी पराकाष्ठाको आत्मसात् कर परिचित होता है। अतएव स्थायी भाव कहनेसे रतिको ही जानना चाहिए। उत्पन्नरति-पुरुष लोग साधक ही हों या सिद्ध ही हों, रसास्वादनके अधिकारी हैं। यहाँ साधक शब्द व्यवहार करनेका तात्पर्य यही है कि किसी व्यक्तिमें रति उदित हुई है, किन्तु विघ्नोंकी परिसमाप्ति नहीं हुई है। वे प्रेमपदार्थके साधक शब्दवाच्य या प्रेमारुरुक्षु हैं। उनमें निष्ठा, रुचि और आसक्ति उदित होनेसे ही क्रमशः अनर्थ दूर हो जाते हैं। विषय-आसक्ति दूर होने पर भी लिङ्गदेह रहते-रहते जड़-सम्बन्ध अवश्य ही रहता है। कृष्णकृपासे वह अति शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। इसी जड़सान्निध्यका नाम विघ्न है। जब तक विघ्न रहता है, तब तक जीव वस्तुसिद्ध नहीं होता। किन्तु प्रेमदशाप्राप्त-रति होने पर ही रसलाभके योग्य बनता है एवं उसीके द्वारा वस्तुसिद्धि उदित होती है।

'स्थायी-भाव' नामप्राप्त रति विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी—इन चारों भावोंद्वारा स्वाद्यत्व अवस्थामें पहुंचते-पहुँचते ही विभावके पञ्च प्रकार स्वभावभेदसे स्वयं भिन्न-भिन्न पंच प्रकार स्वभाव स्वीकार करता है। पञ्च प्रकार स्वभाव निम्नलिखित हैं—(१) शान्त स्वभाव, (२) दास्य स्वभाव, (३) सख्य स्वभाव, (४) वात्सल्य स्वभाव एवं (५) मधुर स्वभाव। ये पाँचों प्रकारके स्वभाव प्रथमतः विभावमें ही रहते हैं। विषय और आश्रय (जिनमें रति कार्य करती है)—ये दोनों विभाग आलम्बनके अन्तर्गत हैं। उक्त पाँचों स्वभाव विषय और आश्रय सम्बन्धी हैं। रति अपने आस्वादनरूप रसक्रियामें विषय और आश्रयका स्वभाव स्वीकार करती है। अचिन्त्यशक्तियुक्त भगवानके विशेष विक्रमद्वारा ही ये पाँचों स्वभाव विषय-आश्रयगत होकर रसकी विचित्रता सम्पादन करते हैं। इन पाँचों स्वभावोंको स्वीकार करनेके कारण रति पाँच प्रकारकी है—(१) शान्त रति, (२) दास्य रति, (३) सख्य रति, (४) वात्सल्य रति और (५) कान्त या मधुर रति।

विभावके स्वभावक्रमसे रति पांच प्रकारकी है। रसक्रियामें विभाव प्रधान या मुख्य सामग्री है। इसलिए इस पंच प्रकार रूपा रतिको मुख्य रति[1] कहा गया है। उस रसके सहायस्वरूप गौण-सामग्री रूपसे सभी संचारी भाव परिचित हैं। जब संचारीभावगत और सात स्वभाव रतिके स्वभावमें प्रवेश कर रतिको भेद

१. मुख्यस्तु पञ्चधा शान्तः प्रीतःप्रेयांश्च वत्सलः। मधुरश्चेत्यमी ज्ञेया यथापूर्वमनुत्तमाः॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

करते हैं, तब गौणस्वभावगत रति[1] सात प्रकारकी होती है—(१) हास्य—हास रति, (२) अद्भुत—विस्मत रति, (३) वीर—उत्साह रति, (४) करुण—शोक रति, (५) रौद्र—क्रोध रति, (६) भयानक—भय रति, और (७) बीभत्स—जुगुप्सा रति।

वस्तुतः रतिका मुख्य स्वभाव पाँच प्रकारका ही है। इस मुख्य स्वभावकी जो समस्त विचित्र क्रियाएँ हैं, उनके सहाय रूपसे उक्त सातों रतियाँ गौणरूपसे काय करती हैं। जहाँ मुख्य भक्तिरस कार्य कर रहा है, वहाँ कभी एक और कभी एकसे अधिक संख्यक गौणरस भी कार्य करते हैं। गौणरसोंकी स्वतन्त्रस्थिति नहीं होने पर भी उनके विचारस्थलमें स्वतन्त्र रसलक्षण है। अतएव हास्यादि सातों गौणरसोंके प्रत्येक रसमें ही स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावोंकी मिलित क्रियागत आस्वादन देखा जाता है। जड़-रसविद् आलङ्कारिक पण्डितोंने उन्हें रस कहकर मुखरूपसे वर्णना की है। किन्तु चित्तत्त्वमें ये सभी रस गौणरूपसे प्रकाशमान हैं। जड़तत्वमें उनकी मुख्यता रहना स्वाभाविक है। श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें दक्षिण और उत्तर विभागमें उनकी स्थिति और क्रियाकी प्रचुररूपसे पर्यालोचना की गई है। कृष्णभक्ति रसमें उक्त सात प्रकारके गौण रस भी उपादेय हैं, क्योंकि वे श्रीकृष्णलीलारसको पुष्ट करते हैं। व्यभिचारी या संचारी भावोंके अन्तर्गत ही कृष्णभक्तिरसमें हास्यादि सातों रस परिगणित हैं। वे उपयुक्त कालमें उदित होकर रससमुद्रकी लहरियोंकी तरह समुद्रके सौन्दय और पुष्टिकी साधना करते हैं। कोई-कोई व्यक्ति रसतत्त्वका अप्राकृतत्त्व अनुसन्धान करनेमें असमर्थ होकर ऐसा सन्देह कर सकते हैं कि हास्य, विस्मय और उत्साहको मंगलमय रसके अन्तर्गत लेने पर लिया भी जा सकता है। किन्तु शोक, क्रोध, भय और जुगुप्सा (घृणा)—ये चारों किस प्रकार अमृत स्वरूप, अशोक-स्वरूप, अभयस्वरूप, अक्षोभस्वरूप रसके अन्तर्गत स्थिति प्राप्त कर सकते हैं? आशंका यह होती है कि उन्हें स्थान देकर रसको क्या प्राकृत या जड़मय तो बनाया नहीं जा रहा है? उसका उत्तर यही है कि परमानन्दमय रसतत्त्वमें वैचित्र्य होनेपर भी ये सभी प्रक्रियाएँ ही आनन्दमूलक[2] हैं, जड़दुःखमूलक नहीं। जड़जगतमें जिस शोक, क्रोध, लय और जुगुप्साकी निन्दा की गई है, वे कहाँसे प्रकट हुए हैं? जड़जगतको अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। यह चिज्जगत्का हेय प्रतिफलनमात्र है। आदर्शमें जो सभी भाव, संस्थान और प्रक्रिया आदि

१. विभावोत्कर्षजो भावविशेषो योऽनुगृह्यते। संकुचन्त्या स्वयं रत्या सा गौणी रतिरुच्यते॥
हास्यो विस्मय उत्साहः शोकः क्रोधो भयं तथा। जुगुप्सा चेत्यसौ भावविशेषः सप्तधोदितः॥
हासोद्भुतस्तथा वीरः करुणो रौद्र इत्यपि। भयानकः सबीभत्स इति गौणश्च सप्तधा॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

२. महाशक्तिविलासात्मा भावोऽचिन्त्यस्वरूपभाक्। रत्याख्य इत्ययं युक्तो न हि तर्केण बाधितुम्॥
भारतायुक्तिरेषा हि प्राक्तनैरप्युदाहृता। (भक्तिरसामृतसिन्धु)

शुद्ध और मंगलस्वरूप हैं, वे सभी ही यहाँ अमंगलरूपसे प्रतिफलित हो रहें हैं। जो जो धर्म वहाँ आश्रयरूपसे नित्यमंगल विधान कर रहा है, उस उस धर्मका प्रतिफलन यहाँ पुण्य रूपसे परिज्ञात है। जो जो धर्म वहाँ व्यतिरेक रूपसे मंगलविधान कर रहा है, वह-वह धर्म प्रतिफलित होकर यहाँ अमंगल उत्पन्न कर रहा है और पापरूपमें लिया जाता है। जिस प्रकार भय और शोक चिज्जगत्में कृष्णसम्बन्धमें अति शीघ्र कोई एक अनिर्वचनीय मंगल प्रदान करते हैं और आनन्दरूप रसको[1] ही पुष्टि करते हैं, वही भय यहाँ प्रतिफलित होकर जीवके भावी अमंगलकी सूचना करता है। तात्पर्य यही है कि वहां समस्त धर्मोंके एकमात्र अवसानस्थल नित्यानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ही हैं। यहाँ इन्द्रियतृप्ति ही उन धर्मोंके प्रतिफलित सभी भावोंकी अवसान भूमि है। यहाँकी अवसानभूमि अमंगल प्रसवकारिणी और अनित्य है। अतएव जो तत्व व्यतिरेक भावसे सुखकी पुष्टि करते हैं, उनके प्रतिफलित तत्त्व यहाँ साक्षात् दुःख उत्पन्न करते हैं। जिनके हृदयमें चित्सुखकी स्वरूपानुभूति निद्रित है, वे लोग इसका तात्पर्य[2] सहसा समझ नहीं सकते। हम लोग गौणरसका अधिक विचार नहीं करेंगे। अतएव यहीं इस विषयका उपसंहार करते हैं। अभी मुख्यरसका विषय आलोचित होगा।

शान्त रति—

जीवकी शुद्धा रति बहुत दिनोंतक आश्रयके सहित जड़कुंठता और विस्तृति भोग कर अनर्थका उपशम होने पर,'आहा! कैसे भयंकर आपद्से उत्तीर्ण हुआ' कहकर अपनी शुद्धावस्थामें विश्राम प्राप्त करता है। उस समय शान्तिरूप एक आश्रयगत भाव उसे स्पर्श करनेपर रति शान्तरति[3] कहलायी जाती है।

दास्य रति—

रतिमें अनन्यममता संयुक्त होने पर दास्य या प्रीतरति[4] होती है। उस समय भगवानको प्रभु समझकर जीव अपनेको उनका नित्यदास समझकर सम्बन्ध स्थापन करता है। दास्यरति दो प्रकारकी है—(१) संभ्रमगत और (२) गौरवगत।

---

१. तत्राप वल्लवाधीशनन्दनालम्बना रतिः। सान्द्रानन्दा चमत्कारपरमावधिरिष्यते॥ (भक्तिरसामृतसिन्धु)

२. अचिन्त्याः खलुः ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्। प्रकृतिभ्यः परं तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥ (महाभारत)

३. विहाय विषयोन्मुख्यं निजानन्दस्थितिर्यतः। आत्मनः कथ्यते सोऽत्र स्वभावः शम इत्यसौ॥
प्रायः शमप्रधानानां ममतागन्धवर्जिता। परमात्मतया कृष्णे जाता शान्तीरतिर्मता॥ (भक्तिरसामृतसिन्धु)

४. स्वस्माद्भवन्ति ये न्यूनास्तेऽनुग्राह्या हरेर्मताः। आराध्यत्वात्मिका तेषां रतिः प्रीतिरितीरिता॥
तत्रासक्तिकृदन्यत्र प्रीतिसंहारिणी ह्यसौ॥ (भक्तिरसामृतसिन्धु)

संभ्रमगत दास्यमें जीव अपनेको अनुगृहीत समझते हैं, गौरवगत दास्यमें अपनेको लाल्य समझते हैं। सभी किङ्कर संभ्रमगत दास्यके आश्रय हैं। सभी पुत्र गौरवगत दास्यके आश्रय हैं। दास्यगत रसमें स्थायी भाव प्रेम अर्थात् रति ममताद्वारा पुष्ट होकर प्रेम हो जाती है। अतएव दास्य रसमें रति और प्रेमरूप लक्षणद्वय-युक्त स्थायी भाव है। उसमें स्नेह और राग कुछ कुछ रहते है।

सख्य रति—सख्य या प्रेमभक्तिरसमें[1] स्थायी भाव प्रणय है। रति और प्रेम उसमें निहित हैं। दास्यमें जो संभ्रम और गौरव थे, वे परिपाक होकर सख्यमें विश्रम्भ या अटल विश्वासके रूपमें बदल जाते हैं।

वत्सलरति—वत्सल रसमें[2] यह विश्रम्भ परिपाक अवस्थामें अनुकम्पा हो पड़ता है। उसमें रति, प्रेम, प्रणय और स्नेह तक प्रबल है। राग भी रहता है।

१. ये स्युस्तुल्या मुकुन्दस्य ते सखायः सतां मता। साम्यद्विश्रम्भरूपैषां रतिः सख्यमिहोच्यते ॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु।

२ गुरवो हि हरेरस्य ते पूज्या इति विश्रुताः। अनुग्रहमयी तेषां रतिर्वात्सल्यमुच्यते ॥
इदं लालनभव्याशीश्चिबुकस्पर्शनादिकृत् ॥ (भक्तिरसामृतसिन्धु।

(क्रमशः)

पत्रिकाके ग्राहकोंसे नम्र--निवेदन

श्रीभागवत पत्रिकाका १६वाँ वर्ष पूर्ण हो रहा है। स्वयं भगवान् श्रीश्रीगौरचन्द्रकी अहैतुकी कृपा एवं असीम करुणासे श्रीपत्रिका नियमित रूपसे प्रकाशित हो रही है। यद्यपि वर्तमान समयमें अधर्म और नास्तिक्यवादका घोर ताण्डव चल रहा है, तथापि आप सज्जनोंकी हार्दिक सहानुभूति एवं प्रोत्साहनके कारण हम जैसे अकिञ्चन भिक्षु लोग इस भगवत्सेवा कार्यमें निर्विघ्नताका अनुभव करते हैं। यह श्रीपत्रिका सम्पूर्णतया आप लोगोंकी धार्मिक भावना एवं श्रद्धाके ऊपर निर्भर रहकर ही प्रकाशित हो रही हैं।

अतएव आप महानुभावोंसे हमारा यही निवेदन है कि जिन-जिन सज्जनोंपर पत्रिकाकी जो भी भिक्षा बकाया हो, कृपया उसे यथाशीघ्र प्रेषित कर हम जैसे दीन-हीन जनोंको इस महान् भगवत्सेवा कार्यमें प्रोत्साहन और सहायता प्रदान करें। इति

विनीत निवेदक
कृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी
(कार्याध्यक्ष)

भगवन्नामोच्चारणसे अजामिलकी भगवत्प्राप्ति

[गताङ्क, संख्या ११, पृष्ठ २५४ से आगे]

इसलिए हे यमके दूतों! तुम लोग अजामिलको मत ले जाओ। क्योंकि इसने मृत्युके समय भगवन्नामका उच्चारण कर अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर लिया है। बड़े महात्मा पुरुषोंने यह बताया है कि—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥
(भा० ६।२।१४-१५)

संकेतमें, किसी दूसरे अभिप्रायसे, परिहास में, तान अलापने में, अथवा किसीकी अवहेलना करनेमें भी यदि कोई भगवान्‌के नामोंका उच्चारणकर लेता है, तो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य गिरते समय, पैर फिसलते समय, अङ्गभङ्ग होते समय, सांपके डसते, आगमें जलते तथा चोट लगते समय भी विवशतामें ही "हरि हरि" कहकर भगवान्‌के नामका उच्चारण कर लेता है, वह यम-यातनाका पात्र नहीं रहता।

महर्षियोंने पापोंके अनुसार ही छोटे-बड़े प्रायश्चित्त बतलाये हैं। तपस्या, दान, जप आदिके द्वारा भी पाप नष्ट होते हैं। परन्तु पापोंसे मलिन हुआ उसका हृदय शुद्ध नहीं होता। वह तो भगवान्‌के चरणोंकी सेवासे, नाम उच्चारणसे ही शुद्ध होता है। यह सर्व विदित है कि—

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥
यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया।
अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः॥
(भा० ६।२।१८-१९)

जैसे जान या अनजानमें, ईंधनका अग्निसे स्पर्श हो जाय, तो वह भस्म हो ही जाता है। वैसे ही जान बूझकर या अनजानमें भगवान्‌के नामोंका सङ्कीर्तन करनेसे मनुष्यके सारे पाप भस्म हो जाते हैं।

जैसे कोई परम शक्तिशाली अमृतको उसका गुण न जानकर अनजानमें ही पी ले, तो भी वह अमर बन जाता है। वैसे ही अनजानमें उच्चारण करनेपर भी भगवान्‌का नाम अपना फल देकर ही रहता है। वह शक्ति या श्रद्धाकी अपेक्षा नहीं करता।

इस प्रकार भगवान्‌के पार्षदोंने भागवत-धर्मका एवं भगवन्नामका पूरा-पूरा महत्व सुना दिया और अजामिलको यमदूतोंके पाशसे छुड़ाकर मृत्युके मुखसे बचा लिया।

अजामिलने दर्शन जनित आनन्दमें मग्न होकर विष्णु पार्षदोंको प्रणाम किया और वह कुछ कहनेको ही था कि पार्षद अन्तर्हित हो गये। इधर हतमनस्क होकर यमदूत भी अपने स्वामीके पास पहुँचे और उन्होंने अपनी सारी वार्ताएँ-जो भी उनके साथ घटित हुई

थीं, विस्तारसे निवेदन कर पूछना आरम्भ किया कि हे नाथ ! संसारके जीव तीन प्रकारके कर्म करते हैं—पाप, पुण्य अथवा दोनोंसे मिश्रित । इन जीवोंको उन कर्मोंका फल देनेवाले संसारमें शासक कितने हैं ? यदि शासक बहुत हैं, तो जीवोंके लिये उनके द्वारा सुख-दुःखकी व्यवस्था एक-सी नहीं होगी । हमने तो यही समझा था कि समस्त प्राणियोंके और उनके स्वामियोंके अकेले आप ही अधीश्वर हैं, आप ही मनुष्योंके पाप और पुण्यके निर्णायक दण्डदाता और शासक हैं । आपके शासनकी अबतक संसारमें अवहेलना नहीं हुई थी । किन्तु इस समय चार अद्भुत सिद्धोंने आपकी आज्ञाका उल्लंघन किया और हम जिस पापीको यातना-गृहकी ओर ले जा रहे थे, उसके फंदे काट दिये । पूछने पर उन्होंने यही प्रकट किया कि इसने मृत्युके समय नारायण नाम ग्रहण किया है । अतएव उसने सारे प्रायश्चित्त कर लिये हैं ।

यमराजने अपने दूतोंके मुखसे यह संवाद सुनकर श्रीहरिके चरणकमलोंका ध्यान किया और कहने लगे—

हे दूतों ! मेरे अतिरिक्त एक और पुरुष ही चराचरके स्वामी हैं, उन्हींमें यह सम्पूर्ण जगत सूत्रमें वस्त्रके समान ओतप्रोत है । उन्हींके अंशसे ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर इस जगतकी उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करते हैं । उन्होंने इस सारे जगतको नथे हुए बैलके समान अधीन कर रक्खा है—

अहं महेन्द्रो निर्ऋतिः प्रचेताः
सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्को विरिञ्चः ।
आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या
मरुद्गणा रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥
अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा
भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः ।
यस्येहितं ना विदुः स्पृष्टमायाः
सत्वप्रधाना अपि किं ततोऽन्ये ॥
(भा० ६।३।१४-१५)

मैं, इन्द्र, निर्ऋति, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि, शङ्कर, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, बारहों आदित्य, विश्वे-देवता, आठों वसु, साध्य, उनचास मरुत्, सिद्ध, ग्यारहों रुद्र, रजोगुण एवं तमोगुणसे रहित भृगु आदि प्रजापति और बड़े-बड़े देवता सबके सब सत्वप्रधान होने पर भी उनकी मायाके अधीन हैं तथा भगवान् कब, क्या, किस रूपमें करना चाहते हैं—इस बातको नहीं जानते । तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ?

यं वै न गोभिर्मनसासुभिर्वा
हृदा गिरा वासुभृतो विचक्षते ।
आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां
चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः परम् ॥
(भा० ६।३।१६)

जिस प्रकार घट-पट आदि रूपवान् पदार्थ अपने प्रकाशक नेत्रको नहीं देख सकते, वैसे ही अन्तःकरणमें अपने साक्षी रूपसे स्थित परमात्माको कोई भी प्राणी इन्द्रिय-मन-प्राण-हृदय या वाणी आदि किसी भी साधनके द्वारा नहीं जान सकता; वे प्रभु सबके स्वामी एवं स्वयं परम स्वतन्त्र हैं ।

उन्हीं मायापति पुरुषोत्तमके दूत उन्हींके समान परम मनोहर रूप-गुण-स्वभावसे सम्पन्न होकर इस लोकमें प्रायः विचरण करते

हैं । विष्णुभगवान्‌के सुरपूजित एवं परम अलौकिक पार्षदोंका दर्शन बड़ा दुर्लभ है । वे भगवान्‌के भक्तजनोंको उनके शत्रुओंसे, मुझसे और अग्नि आदि सब विपत्तियोंसे सुरक्षित रखते हैं ।

धर्मं तु साक्षात् भगवत्प्रणीतं
न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ।
न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः
कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥
(भा० ६।३।१९)

स्वयं भगवान्‌ने धर्मकी मर्यादाका निर्माण किया है । उसे न ऋषि जानते हैं और न देवता या सिद्धगण ही । ऐसी स्थितिमें मनुष्य, विद्याधर, चारण और असुर आदि तो जान ही कैसे सकते हैं ? भगवान्‌के द्वारा निर्मित भागवत-धर्म परम शुद्ध और अत्यन्त गोपनीय है । उसे जानना बहुत कठिन है । जो उसे जान लेता है, वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो जाता है । भागवत-धर्म का रहस्य हम द्वादश व्यक्ति जानते हैं—

स्वयंभूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥
द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ।
गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥
एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥
नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥
(भा० ६।३।२० से २३)

ब्रह्माजी, देवर्षि नारद, भगवान् शङ्कर, सनत्कुमार,कपिलदेव, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, जनक,भीष्म पितामह, बलि महाराज, शुकदेव-जी और मैं—ये द्वादश भागवत-धर्मके ज्ञाता हैं, जो गुह्य, विशुद्ध एवं दुर्बोध है जिसे जानकर पुरुष अमृतत्वको प्राप्त होता है । इस जगतमें जीवोंके लिये यही सबसे बड़ा कर्तव्य धर्म है कि नामकीर्तन आदि उपायोंसे भगवान्‌के चरणोंमें भक्तिभाव प्राप्त कर ले । भगवान्‌के नामोच्चारणकी महिमा तो देखो जो अजामिल जैसा पापी भी एक बार नामोच्चारण करने मात्रसे मृत्युपाशसे छुटकारा पा गया ।

एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां
सङ्कीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि
नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥
(भा० ६।३।२४)

भगवान्‌के गुण-लीला और नामोंका भली-भाँति कीर्तन मनुष्योंके पापोंका सर्वथा विनाश कर दे, यह कोई उसका बड़ा फल नहीं है । क्योंकि अत्यन्त पापी अजामिलने मरनेके समय चञ्चल चित्तसे अपने पुत्रका नाम नारायण उच्चारण किया । इस नामाभास मात्रसे उसके पाप तो क्षीण हो ही गये, वह मुक्तिको प्राप्त कर कृतार्थ हो गया ।

अतः मनुष्य जीवनका यही चरम फल है कि वह निरन्तर भगवान्‌की भक्तिमें अपना सर्वस्व समर्पण कर दे । परन्तु भगवान्‌की मायाके अधीन हो मीठे-मीठे अर्थवादके लोभ में फँसकर बड़े-बड़े विद्वानोंकी बुद्धि भी भ्रमित हो जाती है जिससे वे भगवान्‌के और उनकी भक्तिके महत्वको नहीं समझते । साधारणजनकी तो बात ही निराली है । यह निश्चित सिद्धान्त है कि भगवान् अनन्तको

जिन्होंने अपने अन्तःकरणमें भक्तिभावसे स्थापित कर लिया है, वे मेरे दण्डके पात्र नहीं हैं । पहली बात तो यह है कि वे पाप करते ही नहीं । कदाचित् संयोगवश पाप बन जाते हैं, तो उन्हें भगवान्‌के गुण-गान तत्काल ही नष्ट कर देते हैं । जो भगवान्‌पर ही सर्वात्म भावसे निर्भर हैं, भगवान्‌को ही साधन-साध्य समझते हैं, ऐसे महापुरुषोंके चरित्रोंका गुणगान बड़े-बड़े सिद्ध पुरुष और देवता करते हैं । भगवान्‌की गदा उनकी रक्षा करती है । उनके पास भूलकर भी तुम लोग मत जाना । तुम्हें मैं सावधान करा देता हूँ कि मेरे पास ऐसे ही व्यक्तियोंको लाना जो—

तानानयध्वमसतो विमुखान् मुकुन्द-
पादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम् ।
निष्किञ्चनैः परमहंसकुलैरसङ्गै-
र्जुष्टाद् गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥
जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥
(भा० ६।३।२८-२९)

जिस दिव्यरसके लोभमें सम्पूर्ण जगत और शरीर आदिसे भी अहंता-ममता हटाकर बड़े-बड़े परमहंस अकिञ्चन होकर निरन्तर भगवान् मुकुन्दके पदारविन्दका मकरन्द रस-पान करते रहते हैं, उन्हें छोड़कर जो दुष्ट उस दिव्यरससे विमुख हैं और नरकके द्वाररूप घर-गृहस्थीकी तृष्णाका बोझा बांध कर उसे ढो रहे हैं, उन्हें ही मेरे पास बार-बार लाया करो ।

जिनकी जीभ भगवान्‌के गुणों और नामों का उच्चारण कहीं करती, जिनका चित्त उनके चरणारविन्दोंका चिन्तन नहीं करता और जिनका शिर एक बार भी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें नहीं झुकता, उन भगवत्-सेवा-विमुख पापियोंको ही मेरे पास लाया करो । ऐसा कहते-कहते यमराज भावविभोर होकर अपने और अपने दूतों द्वारा किये गये अपराधकी क्षमा माँगने लगे ।

तत् क्षम्यतां स भगवान् पुरुषः पुराणो
नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ।
स्वानामहो न विदुषां रचिताञ्जलीनां
क्षान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥
(भा० ६।३।३०)

हे भगवान् ! आज मेरे दूतोंने आपके पार्षदोंका अपराध करके स्वयं आपका ही तिरस्कार या अपराध किया है । यह मेरा ही दोष या अपराध है । पुराणपुरुष भगवान् नारायण हम लोगोंका यह अपराध क्षमा करें । हम अज्ञानी होने पर भी आपके ही निजजन हैं और आज्ञा पालनमें अञ्जलि बाँधकर सदा उत्सुक रहते हैं । अतः परम महिमामय भगवान् ! आपके लिए यही योग्य है कि आप क्षमा कर दें । मैं उन सर्वान्तर्यामी एकरस अनन्त प्रभुको बारम्बार नमस्कार करता हूँ ।

इस प्रकार यमराजने बड़े-से-बड़े पापोंकी निवृत्तिका सर्वोत्तम अन्तिम उपाय भगवान्‌के गुणगान और भगवान्‌के नामोंका कीर्तन है, इसीसे संसारका कल्याण है—यह सिद्ध किया । श्रीशुकदेव मुनिका भी यह निश्चित मत है कि पाप वासनाओंकी सर्वथा निर्मुक्ति प्रायश्चित्तादिकोंसे न होकर भगवान्‌की

भक्तिसे होती है और उसीसे पूर्णतः आत्म-शुद्धि होती है। इसीसे भगवच्चरणारविन्द रस लोभी स्वभावसे ही मायाके आपात् रमणीय दुःखद विषयोंमें नहीं रमते ।

इधर अजामिलने विष्णुपार्षदोंसे भागवत धर्म और यमदूतोंके मुखसे वेदोक्त भागवत धर्मका श्रवण किया था। इससे उसके हृदयमें सर्वपापहारी भगवान्‌की भक्तिका उदय हो गया और मन ही मन अनुतापमें भरकर कहने लगा—मैं इन्द्रियोंका कैसा दास हूँ ? मैंने एक दासीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न कर अपने सहज सिद्ध ब्राह्मणत्वको नष्ट कर दिया ।

धिङ्मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् ।
हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापामसतीमगाम् ॥
वृद्धावनाथौ पितरौ नान्यबन्धू तपस्विनौ ।
अहो मयाधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ॥
सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे ।
धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विन्दन्ति यमयातनाः ॥
(भा० ६।२।२७ से २९)

धिक्कार है ! मुझे बार-बार धिक्कार है!! मैं सन्तजनोंके द्वारा निन्दित पापात्मा हूँ । मैंने अपने कुलको कलङ्कित कर दिया । हाय, हाय ! मैंने सती एवं अबोध पत्नीका परित्याग कर दिया और शराब पीनेवाली कुलटाका संसर्ग किया। मैं कितना नीच हूँ ! मेरे माता-पिता वृद्ध और तपस्वी थे, वे सर्वथा असहाय थे । उनकी सेवा करनेवाला और कोई दूसरा नहीं था। मैंने उनका भी परित्याग कर दिया । ओह ! मैं कितना कृतघ्न हूँ ! अवश्य ही अत्यन्त भयावने नरकमें गिरूँगा, जिसमें गिरकर धर्मघाती पापात्मा कामी पुरुष अनेक प्रकारकी यातना भोगते हैं । यह मैंने अभी क्या देखा—

किमिदंस्वप्न आहोस्वित् साक्षाद्दृष्टमिहाद्भुतम्।
क्व याता अद्यते ये मां व्यकर्षन् पाशपाणयः ॥
अथ ते क्व गताः सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः ।
व्यमोचयन् नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुवः ॥
(भा० ६।२।३०-३१)

अभी-अभी मैंने जो अद्भुत दृश्य देखा, क्या वह स्वप्न है अथवा जागृत अवस्थाका ही प्रत्यक्ष अनुभव है ? अभी-अभी जो हाथोंमें फंदा लेकर मुझे खींच रहे थे, वे कहाँ चले गये ? वे मुझे अपने फंदोंमें फँसाकर नीचे ले जा रहे थे। परन्तु चार अत्यन्त सुन्दर सिद्धोंने आकर मुझे छुड़ा दिया । वे अब कहाँ चले गये ?

यद्यपि मैं इस जन्मका महापापी हूँ, पर मैंने पूर्व जन्ममें अवश्य ही शुभ कर्म किये होंगे । उसीके फलस्वरूप मुझे श्रेष्ठ देवपुरुषोंके दर्शन हुए । उनका स्मरण कर मेरा हृदय आनन्दसे भर रहा है । मेरे पूर्वजन्ममें सुकृत करनेका यह भी प्रमाण है कि मरनेके समय मेरी जिह्वासे भगवान्‌के नामका उच्चारण हुआ ।

क्व चाहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः ।
क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मङ्गलम् ॥
(भा० ६।२।३४)

कहाँ तो मैं महाकपटी, पापी, निर्लज्ज, ब्राह्म तेजको नष्ट करनेवाला, तथा कहाँ भगवान्‌का वह परम मङ्गलमय नारायण नाम ! सचमुच मैं कृतार्थ हो गया ।

अब मैं अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे फिर मैं घोर अन्धकारमय नरकमें न गिरूँ। अब मैं अपने शरीरसे सबका हित करूँगा। अपनी वासनाओंको शान्त करूँगा। सबके साथ मैत्री भाव रक्खूँगा। दुखियोंपर दया करूँगा एवं मैं-मेरे भावका परित्याग करूँगा।

इस प्रकार भगवान्‌के पार्षद महात्माओंके थोड़ी ही देरके सत्सङ्गके प्रभावसे अजामिलको महान् पश्चाताप हुआ जिससे उसका आत्मस्थ मल धुल गया। उसके चित्तमें संसारके प्रति तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह सबके मोह सम्बन्धको छोड़कर हरिद्वार चला गया और वहाँ गङ्गा समीपस्थ देवमन्दिरमें पहुँचकर भगवान्‌की आराधनामें तल्लीन हो गया। अन्तमें अपने शरीरका परित्याग कर विष्णु पार्षदोंके साथ स्वर्णमय विमानमें आरूढ़ होकर भगवद्धामको सिधार गया।

एवं स विप्लावितसर्वधर्मा
दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा।
निपात्यमानो निरये हतव्रतः
सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन्॥
नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं
मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात्।
न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो
रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा॥
(भा० ६।२।४५-४६)

अजामिलने दासीका सम्पर्क कर अपने सारे धर्म-कर्मको नष्ट कर दिया था। वह अपने निन्दित कर्मके कारण पतितावस्थाको प्राप्त हो गया था और नियमोंसे च्युत होनेसे नरकमें गिराये जानेका अधिकारी था। पर भगवान्‌के नामके उच्चारण करनेमात्रसे तत्काल ही पावन और मुक्त हो गया।

जो व्यक्ति इस संसारसे मुक्त होनेके अभिलाषी हैं, उनका यह परम कर्तव्य है कि अपने चरणोंके स्पर्शसे तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले भगवान्‌के नामका आश्रय ग्रहण करें। क्योंकि नामका आश्रय लेनेसे मनुष्यका मन फिर कर्मबन्धनमें नहीं फंसता। भगवन्नामके अतिरिक्त किसी भी प्रकारके प्रायश्चित्त करनेसे रजोगुण-तमोगुणका मल नष्ट नहीं होता।

अतः इस संसारकी विविध यातनाओंकी निवृत्ति और परम सुख-शान्तिके लिए भगवन्नाम-कीर्तन ही सब साधनोंसे परमोत्कृष्ट साधन है। क्या भारतीय जन देश-देश, प्रान्त-प्रान्त, नगर-नगर, ग्राम-ग्राममें भगवन्नाम-कीर्तनका प्रचार कर अलौकिक आनन्दकी अभिवृद्धिमें सहायक होंगे?

—बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न